Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852
Received: 07-08-2023, Accepted: 21-08-2023, Published: 07-09-2023
Volume 4, Issue 2, 2023, Page No. 3-5

छायावादी राष्ट्रवाद का भाव–पक्ष

भास्कर लाल कर्ण
असोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग, मोतीलाल नेहरू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
छायावाद के मूल्यांकन में आलोचक कई तरह के सवाल उठाते रहे हैं। एक तरफ उस पर आध्यात्मिक होने का आरोप लगाया जाता है तो दूसरी तरफ उस काव्य को विशुद्ध कल्पना काव्य मान लिया जाता है, जहां प्रकृति का विशेष रूप से आग्रह हो। जबकि छायावादी कविता का आविर्भाव ही विद्रोह के रूप में हुआ था। कवियों ने कविता को छन्द के बन्धन से मुक्त किया, नये–नये विषयों द्वारा काव्य को संवारा, सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक अभिव्यंजना तथा प्रकृति के नारी रूप में अंकन द्वारा इन कवियों ने श्रृंगार की स्थूल मांसलता का परिहार किया। इस युग में नारी माया की जगह सहधर्मिणी और सहयोगिनी बनी। साहित्य में भाव व विचार की गति राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य से आबद्ध हो विविध स्वर में उभर कर आगे बढ़ती रही है।

मूल शब्दः छायावाद, रहस्यवाद, राष्ट्रीयता, राष्ट्रवाद, नवजागरण, राजनीति, द्वंद्व, आधुनिकता, पुनरुत्थानवाद, संस्कृति, सामन्तवाद, साम्राज्यवाद, स्वाधीनता, स्वराज्य

1918 ई0 से 1936 ई0 के बीच के हिन्दी कविता को आलोचकों ने अलग–अलग धाराओं में देखने का प्रयास किया है। राष्ट्रीय कविता और रहस्यवादी कविता के रूप में या छायावादी और उत्तर–छायावादी धारा के रूप में। लेकिन इस अंतराल के कवियों का यह बंटवारा तार्किक नहीं है। यह अलग बात है कि इस समय लिख रहे कवियों की भावभूमि अलग–अलग है। यह भिन्नता व्यक्तिनिष्ठ है, जो ि
क इस अंतराल की सामाजिक, राजनीतिक स्थिति की विविधता है, न कि भिन्नता। माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि कवियों की भाव–धारा और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर प्रसाद आदि की राष्ट्रीय कविताओं की भावधारा में दृष्टिकोण का फर्क है। लेकिन इनकी राष्ट्रीयता की भावना का धरातल समान है। इस युग में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की भावना कई रूपों में अभिव्यक्त हुई है। प्राचीन गौरव की पुनरूत्थानवादी भावना आर्य संस्कृति की ही जयकार है, लेकिन यह कहीं से भी संकीर्ण एवं सांप्रदायिक नहीं है। भारतवासियों ने वर्तमान पराधीनता के अपमान के विरुद्ध अतीत का सहारा लिया। अतीत की यह पुनरूत्थानवादी भावना जयशंकर प्रसाद में सर्वाधिक थी। अपने ऐतिहासिक नाटकों–'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त' आदि के द्वारा उन्होंने जागरण के प्रसार में सहयोग दिया।

'अरूण यह मधुमय देश हमारा'[1]

'भारतमाता' की मूर्त कल्पना कर विजय की कामना की गईः

'भारति, जय, विजय करे।
कनक–शस्य–कमल धरे।
लंका पदतल–शतदल,
गर्जितोर्भि सागर–जल
धोता शुचि चरण–युगल,
स्वत्तव कर बहु–अर्थ–मेरा'[2]

छायावाद युग में राष्ट्रीयता की प्राथमिक अभिव्यक्ति उन नेताओं की प्रशंसा के रूप में प्रकट हुई, जिन्होंने देश का नेतृत्व किया था। सत्याग्रही वीरों की प्रशंसा में कवि अतीत के स्वाधीनतावादी नेताओं को नहीं भूल सके। रामधारीसिंह 'दिनकर' ने उन नेताओं की ओर संकेत किया–

'देखा, शून्य कुँवर का गढ़ है, झाँसी की वह शान नहीं है।
दुर्गादास–प्रताप बली का प्यारा राजस्थान नहीं है।।
समय माँगता मूल्य मुक्ति का, देगा कौन माँस की बोटी।
पर्वत पर आदर्श मिलेगा, खायें चलो घास की रोटी।।'[3]

छायावादी कवियों ने स्वाधीनता के लिए उद्‌बोधन गीत लिखेः

'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती।'[4]

अकाली सिक्खों के शौर्य और गीता के वाणी का स्मरण कराते हुए 'निराला' ने लिखाः–

'शेरों की माद में
आया है आज सयार
जागो फिर एक बार।'[5]

छायावादी कवि हर तरह से जाति–भेद और देश–भेद के विरूद्ध थे। 'उसने केवल प्रेम–राज्य में ही रूढ़ियों के विरूद्ध विद्रोह नहीं किया, बल्कि जीवन के जिस क्षेत्र में उसे विषमता, पराधीनता और अन्याय दिखायी पड़ा, वहीं उसने संघर्ष आरंभ कर दिया।'[6] और इसीलिए जब उसने सुना कि इंगलैंड के सम्राट अष्टम एडवर्ड ने एक सामान्य विधवा स्त्री के प्रेम के लिए सिंहासन छोड़ दिया, तो वह उसके इस आचरण को दर्ज करता है।[7]
छायावादी कवियों के मन में प्राचीन सीमाओं का तो बोध था लेकिन नवीन क्षितिज की कोई स्पष्ट रूपरेखा न थी। पूरा युग ही आनेवाली नयी संस्कृति के प्रति स्वप्नदर्शी बना हुआ था। यदि एक ओर गांधी रामराज्य की कल्पना कर रहे थे तो दूसरी ओर रवीन्द्र विश्वमानवता का स्वप्न देख रहे थे। नये मानवीय मूल्यों की स्थापना, व्यक्ति–स्वातंत्रय की घोषणा और आत्म–प्रसार की ललक ने कवियों के व्यक्तित्व को अनन्त के प्रति जिज्ञासु बनाया।

छायावाद के मूल्यांकन में आलोचक कई तरह के सवाल उठाते रहे हैं। एक तरफ उस पर आध्यात्मिक होने का आरोप लगाया जाता है तो दूसरी तरफ उस काव्य को विशुद्ध कल्पना काव्य मान लिया जाता है जहां प्रकृति का विशेष रूप से आग्रह हो। छायावाद को आध्यात्मिक काव्य मानने वालों को उत्तर देते हुए डॉ० शंभुनाथ ने लिखा है कि ''सामंतवाद और साम्राज्यवाद के विरूद्ध लड़नेवालों को एक–सूत्र में बांधने के लिए अध्यात्मवाद का प्रयोग सर्वत्र एक नारे के रूप में किया गया ३ छायावादी कवियों में भी अधिकांश ने इस आध्यात्मिकता के माध्यम से ही अपने विद्रोह का स्वर ऊँचा किया है। निराला का 'जागो फिर एक बार', 'राम की शक्ति–पूजा', प्रसाद की 'कामायनी' आदि रचनाएं इसका प्रमाण हैं।[8] छायावाद पर अध्यात्मवाद का आरोप उसकी रहस्य भावना के कारण भी लगाया गया है। इन कवियों में जो अज्ञात और असीम की अभिलाषा है ''वह वस्तुतः ज्ञात सीमाओं के असंतोष से ही उत्पन्न हुई है और यह असंतोष तथा अभिलाषा केवल दिमागी ऐय्याशी नहीं है बल्कि इसका सामाजिक आधार है। यह असंतोष और महत्वाकांक्षा उस मध्यवर्गीय व्यक्ति की है जो मध्ययुगीन पारिवारिक और सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर उन्मुक्त वातावरण में सांस लेने के लिए आकुल हो रहा था।''[9]

छायावादी कविता का आविर्भाव ही विद्रोह के रूप में हुआ था। कवियों ने कविता को छन्द के बन्धन से मुक्त किया, नये–नये विषयों द्वारा काव्य को संवारा, सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक अभिव्यंजना तथा प्रकृति के नारी रूप में अंकन द्वारा इन कवियों ने श्रृंगार की स्थूल मांसलता का परिहार किया। इस युग में नारी माया की जगह सहधर्मिणी और सहयोगिनी बनी। सुमित्रानंदन पंत ने युग–युग से बन्द नारी की मुक्ति का आह्वान कियाः

'मुक्त करो नारी को मानव!
चिर बंदिनि नारी को
युग–युग की कर्बर कारा से,
जननि, सखि, प्यारी को।'[10]

मति–भ्रष्ट एवं पद–दलित जाति अपनी सभ्यता और संस्कृति को क्षुद्र ही समझने लगती है। दूसरी ओर विदेशी अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने में सफल होते हैं। विवेक–च्युत भारतीय सुख की तृष्णा में अपना अमृत–स्रोत त्यागकर विदेशी गरल अपना लेते हैं। वर्तमान का 'खंडहर' इसी ओर संकेत करता हैः

"तुमने मुख फेर लिया
सुख की तृष्णा से अपनाया है गरल,
हो बसे नव छाया में,
नव स्वप्न ले जगे,
भूले वे मुक्त प्राण, साम–गान, सुधा–पान।''[11]

धार्मिक आडंबर और अंधविश्वास किस प्रकार मानव को कमजोर और पतित बनाता है, जयशंकर प्रसाद ने इसे बखूबी समझा है। धर्म के नाम पर अपने ही परिजनों की बलि देना और समाज से निर्वासित करना, क्या यह नैतिक है!

"हाय धर्म का प्रबल भयानक रूप यह
महापाप को भी उल्लंघन कर गया
कितने गए जलाए, वध कितने हुए
निर्वासित कितने होकर कब–कब नहीं
बलि चढ़ गए, धन्य देवी धर्मान्धते।''[12]

छायावाद मुख्यतः शक्ति का काव्य है। इस युग की प्रतिनिधि रचना जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' में देव और असुर संस्कृतियों से भिन्न, मानवीय संस्कृति के विकास का आख्यान है। पराजित और थके 'मनु' के प्रति 'श्रद्धा' का यह आह्वान किः

'शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरूपाय,
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।'[13]

यहां संदेश शक्ति के नियोजन का है। इसी धरातल पर निराला की 'राम की शक्ति–पूजा' को रखकर देखा जाय। यहां 'शक्ति' रावण के पक्ष में आ गई हैः

'अन्याय जिधर, हैं उधर शक्ति।'[14]

जयशंकर प्रसाद के 'मनु' और निराला के 'राम' की हताशा और निराशा, तत्कालीन भारतीय जनमानस की मनःस्थिति है। महात्मा गांधी ने भारतीय जनमानस से इस निराश चेतना को हटाने का सफल प्रयास किया। ब्रिटिश साम्राज्य की नियोजित ताकत को चुनौती देने के लिए गांधी नई ताकत (या शक्ति) की कल्पना की। इसे ही आज जन–शक्ति के रूप में जाना जाता है। यह अकारण नहीं है कि निराला के राम को जाम्बवान परामर्श देते हैं किः

'शक्ति की करो मौलिक कल्पना'[15]

इस नवीन शक्ति की परिकल्पना अनुकरण से संभव नहीं। लम्बे समय से पराधीन जाति को इससे बड़ी और सार्थक दृष्टि और क्या हो सकती है! और फिर, महाशक्ति का राम के बदन में लीन हो जाना, आत्मशक्ति के विकास की व्यंजना देता है। भारतीय जनमानस को शक्ति बाहर से नहीं बल्कि अपने अंदर से ही मिलनी थी। गरीब, पद–दलित, शोषित, उपेक्षित जनता की एकता की शक्ति। यही शक्ति फिर स्वाधीनता के लिए संजीवनी का कार्य करती है। गांधी जी ने स्वाधीनता और सत्य की जो परिभाषाएं दी थी, और उन तक पहुंचने का जो रास्ता बताया था, उसका एक आयाम इतिहास के बाहर, देश–काल से परे भी है। उनकी स्वाधीनता किसी सत्याग्रही को सहज ही उपलब्ध हो जाती है, बशर्ते कि वह उस आंतरिक परिवर्तन की सीमा को पार कर जाता है जो उसे गुलाम बनाए हुए है। फिर, भौतिक रूप में यदि वह गुलाम भी है तो इसका कोई अर्थ नहीं रह जाता है। गांधी जी के इसी सूत्र (या मंत्र भी कह सकते हैं) को ध्यान में रखकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि ''इस (स्वाधीनता को लक्ष्य बनाकर चलाये गए) महान आंदोलन ने भारतीय जनता के चित्त को बन्धन–मुक्त किया। यही बन्धन–मुक्त चित्त काव्यों, नाटकों और उपन्यासों में नाना भाव से प्रकट हुआ।''[16]

छायावादी कवि स्वराज्य की जिस व्यापक कल्पना की ओर बढ़ रहे थे, उसका स्वरूप अभी मूर्तित नहीं हुआ था। फिर भी, क्षितिज के उस पार कुछ ऐसा है जो विद्युत–चुम्बक की तरह यों खीचता है कि निराला की सुदृढ़ मांसपेशियां और महादेवी की कोमल भावनाएं एक सरीखे चरमराते दिखते हैं परन्तु बार–बार टकराने पर भी न क्षितिज ही टूटता है, और न उत्तर मिलता है कि उस पार है क्या! वस्तुतः आध्यात्मिक तत्ववाद परिवर्तन के बिल्कुल विरूद्ध नहीं होता। परन्तु इसमें परिवर्तन की घटना केवल एक बार ही घटित होता है। ''उसके बाद परिवर्तन का 'संसार' खत्म हो जाता है। इसलिए इसका रूप काल से कालातीत, अज्ञान से ज्ञान, अविधा से विद्या, मोह से निजरूप में लय होने, असत्य से खत्म, तमस से ज्योति, मृत्यु से अमरता, गुलामी से आजादी, क्षितिज के इस पार से उस पार, अंग्रेजी राज से हिन्दुस्तानी राज, वेश्यावृत्ति से आश्रम, शराब से खद्दर, यथार्थ से आदर्श, लघु से महत तक ही चुक जाता है।''[17] यह अकारण

नहीं है कि छायावादी कवि अपने सपनों के लिए एक आदर्श स्थिति की कल्पना करते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं।

यथार्थवादी धरातल पर पहुंचकर भी पंत एवं निराला जैसे कवि भी अंततः आध्यात्मिक भावयोग में लीन हो जाते हैं। राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा से अलग जितनी धाराएं थीं उनका आरंभ ही यहीं से होता था कि परिवर्तन तो ठीक है लेकिन आजादी के बाद क्या होगा, इसका निबटारा अभी से कर लिया जाय। प्रामाणिक भारतीय मानस (जो उस समय मुख्यधारा था) एक ही उत्तर था–इस तरह के प्रश्न इस भारतीय एकता को धक्का पहुंचाते हैं। हमें सिर्फ उसका स्वप्न देखना चाहिए और वेग से आकर्षित होना चाहिए। जैसा कि कहा गया, आध्यात्मिक तत्ववाद में परिवर्तन एक बार ही घटित होता है और वह परिवर्तन छायावादी काव्य (निराला और पंत के यहां) में घटित हो चुका था। इसलिए इसके बाद यह आशा करना कि वह और परिवर्तित होकर यथार्थ के धरातल पर अवतरित हो, संभव नहीं था। अतः कहा जा सकता है कि प्रसाद–प्रेमचंद (या छायावाद) की युगभूमि द्वन्द्व की न होकर बल्कि संतुलन स्थापित करने का था।

तीसरे दशक तक आते–आते छायावादी अखंड कल्पनाशीलता और आध्यात्मिकता खंडित होने लगी। राजनीति और कल्पनाशीलता में एक तनाव पैदा हो गया और इनके बीच की नैतिक कड़ी बिखर गई। आध्यात्मिक मुद्रा लापता हो गई। प्रेमचन्द का 'किसान' वह प्रश्न पूछ बैठता है जिससे मध्यवर्गीय राष्ट्रीय आंदोलन की एकता को धक्का लगता है। 'गबन' उपन्यास का हंसोड़ चरित्र देवीदीन कहता है कि ''साहब, सच बताओ, जब तुम सुराज का नाम लेते हो, उसका कौन–सा रूप तुम्हारी आंखों के सामने आता है?

पहाड़ों की हवा खाओगे, अंग्रेजी ठाठ बनाए घूमोगे इस सुराज से देश का क्या कल्याण होगा। तुम्हारी और तुम्हारे भाई–बंदों की जिन्दगी भले आराम और ठाठ से गुजरे पर देश का तो कोई भला न होगा। ३ तुम दिन में पांच बेर खाना चाहते हो, और वह भी बढ़िया माल, गरीब किसान को एक जून सूखा चबेना भी नहीं मिलता। उसी का रक्त चूसकर तो सरकार तुम्हें हुद्दे देती है। तुम्हारा ध्यान कभी उनकी ओर जाता है? अभी तुम्हारा राज नहीं है, तब तो भोग–विलास पर इतना मरते हो जब तुम्हारा राज हो जाएगा, तब तो तुम गरीबों को पीस कर पी जाओगे।''[18]

संदर्भ सुचि

1. जयशंकर प्रसाद, चन्द्रगुप्त, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2005, पृष्ठ 73
2. निराला, राग विराग, संपादक–रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 1997, पृष्ठ 76
3. रामधारी सिंह 'दिनकर', स्वतंत्रता पुकारती, संपादक–नंदकिशोर नवल,साहित्य अकादमी, संस्करण 2006, पृ0–272
4. जयशंकर प्रसाद, प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2009, पृष्ठ 96
5. निराला, राग विराग, संपादक–रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 1997, पृष्ठ 58
6. नामवर सिंह, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2010, पृ0–65
7. निराला, अनामिका, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2004, पृष्ठ 23
8. शंभुनाथ, छायावाद युग, सरस्वती मंदिर, बनारस, संस्करण 1952, पृ0–60–61
9. नामवर सिंह, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2009, पृ0–50–51
10. सुमित्रानंदन पंत, पंत सहचर, संपादक–अशोक वाजपेयी, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2001, पृ0–173
11. निराला, अनामिका, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2004, पृष्ठ 31
12. जयशंकर प्रसाद, कानन–कुसुम, डायमंड पॉकेट बुक्स, संस्करण 2020, पृ0–121
13. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, श्रद्धा सर्ग, भारती भंडार, संकरण 1958, पृ0–34
14. निराला, राग विराग, संपादक–रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 1997, पृष्ठ 98
15. वही, पृष्ठ 100
16. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्यः उद्‌भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2007, पृ0–257
17. विजयदेव नारायण साही, छठवाँ दशक, हिंदुस्तानी ऐकेडेमी, संस्करण 1987, पृ0–265
18. प्रेमचंद, ग़बन, स्टार पब्लिकेशन प्रा० लि०, संस्करण 2008, पृष्ठ 144